The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 7 | July 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF(2026): 5.6
Website: www.theacademic.in

भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार में हिंदी भाषा की भूमिका

डॉ. शीनुल इस्लाम मलिक

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गाँधी फ़ैज़-ए-आम कॉलेज, शाहजहांपुर

Sheenulislam19@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.22098129

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Received: 23-06-2026

Accepted: 22-07-2026

Published: 21-08-2026

Keywords:

भारतीय ज्ञान परंपरा, हिंदी भाषा, भक्ति साहित्य, राजभाषा, जनसंचार, डिजिटल हिंदी

ABSTRACT

भारतीय ज्ञान परंपरा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को स्पर्श करने वाली एक बहुआयामी चिंतन-प्रणाली है, जिसमें आध्यात्मिक दर्शन के साथ-साथ चिकित्सा, खगोल, गणित, राजनीति, समाज-व्यवस्था और नैतिक मूल्यों से जुड़ा ज्ञान भी समाहित है। यह परंपरा मूलतः संस्कृत में सृजित और संरक्षित हुई, किंतु उसका जन-जन तक पहुँचना तभी संभव हो सका जब हिंदी भाषा ने उसे सरल, सुगम और सर्वग्राह्य स्वरूप प्रदान किया। हिंदी भाषा ने भक्ति आंदोलन से लेकर आधुनिक डिजिटल युग तक भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार में किस प्रकार की भूमिका निभाई है; यह सर्वविदित है। विद्यापति, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, रहीम, रसखान, गुप्त, भारतेन्दु, दिनकर, अज्ञेय आदि की साहित्य संवेदनायें तो हिन्दी को विश्व के हृदय की साम्राज्ञी के रूप में बहुत पहले ही स्थापित कर चुकी हैं लेकिन इनके साथ-साथ जनगणना 2011 और KPMG-Google (2017) के आँकड़ों का अध्ययन भी हिन्दी के वैशिष्ट्य को स्वतः ही स्पष्ट करता है। अस्तु यह आकाट्य सत्य है कि, हिंदी केवल एक संचार-माध्यम नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा की वाहक, संरक्षक और उसे नवीन संदर्भों में पुनर्जीवित करने वाली सशक्त शक्ति भी है।

1. प्रस्तावना

किसी भी सभ्यता का ज्ञान तब तक जीवंत नहीं रहता जब तक वह उस भाषा में प्रवाहित न हो जिसे साधारण जन बोलते और समझते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा वेद, उपनिषद, दर्शन-ग्रंथों, आयुर्वेद, ज्योतिष और नीतिशास्त्र के रूप

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

में शताब्दियों तक संस्कृत भाषा में संचित रही, परंतु यह संचय तब तक अधूरा ही माना जाएगा जब तक इसे जनसामान्य की चेतना तक न पहुँचाया जाए। इस अंतर को पाटने का ऐतिहासिक कार्य हिंदी भाषा ने किया। हिंदी ने न केवल इस ज्ञान को सरल शब्दों में ढाला, बल्कि उसे नए युग की आवश्यकताओं, नई सामाजिक परिस्थितियों और नए माध्यमों के अनुरूप पुनर्व्याख्यायित भी किया। इस अर्थ में हिंदी भाषा को भारतीय ज्ञान परंपरा की केवल वाहक कहना पर्याप्त नहीं, वह इस परंपरा की सक्रिय व्याख्याकार और पुनर्सर्जक भी रही है।

2. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

इस विषय पर हुए पूर्ववर्ती अध्ययनों की समीक्षा से पता चलता है कि विद्वानों ने भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य के संबंध को विविध दृष्टिकोणों से देखा है। शर्मा[1] ने भक्ति साहित्य, गुरु-शिष्य परंपरा और संत साहित्य के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा की अभिव्यक्ति का विश्लेषण किया है, जबकि सिन्हा एवं जैन[2] ने हिंदी भाषा के भाषिक उद्भव और विकास-क्रम पर केंद्रित अध्ययन प्रस्तुत किया है। गोयल एवं आरती[3] ने गुरु-शिष्य परंपरा और वाङ्मय के वर्गीकरण (शास्त्र एवं काव्य) की दृष्टि से इस विषय की पड़ताल की है। बघेल[4] ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में भारतीय ज्ञान परंपरा के कालक्रमिक विकास एवं शैक्षिक क्रियान्वयन का एक संरचनात्मक ढाँचा प्रस्तुत किया है।

इन अध्ययनों की समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश पूर्ववर्ती शोध या तो भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य के सामान्य संबंध पर, या हिंदी भाषा के भाषिक विकास-क्रम पर केंद्रित रहे हैं। हिंदी भाषा की विशिष्ट 'भूमिका'—अर्थात् वह किन संस्थागत, सांविधानिक, सामाजिक एवं तकनीकी माध्यमों से इस ज्ञान परंपरा का सक्रिय प्रसारक बनी—इस पर केंद्रित समग्र एवं सांख्यिकीय आँकड़ों से समर्थित अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित हैं। प्रस्तुत शोधालेख इसी शोध-रिक्तता (research gap) को संबोधित करने का प्रयास करता है।

3. शोध उद्देश्य एवं शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य हैं:

- भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार में हिंदी भाषा की ऐतिहासिक भूमिका का विश्लेषण करना;
- भक्ति साहित्य, शिक्षा-व्यवस्था, संवैधानिक स्थिति, जनसंचार माध्यमों और डिजिटल मंच के परिप्रेक्ष्य में इस भूमिका के विविध आयामों की पहचान करना;
- तथा उपलब्ध सांख्यिकीय आँकड़ों के आधार पर हिंदी भाषा की वर्तमान स्थिति एवं भविष्य की संभावनाओं का आकलन करना।

शोध-विधि की दृष्टि से यह अध्ययन गुणात्मक-विश्लेषणात्मक (qualitative-analytical) एवं व्याख्यात्मक (interpretative) पद्धति पर आधारित है, जिसमें प्राथमिक साहित्यिक स्रोतों के रूप में हिन्दी साहित्य का विश्लेषण तथा द्वितीयक स्रोतों के रूप में जनगणना प्रतिवेदन, संवैधानिक प्रावधान, नीति-दस्तावेज़ एवं उद्योग-रिपोर्ट आदि का सांख्यिकीय विश्लेषण निहित है।

4. भारतीय ज्ञान परंपरा का स्वरूप एवं व्यापकता

भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल धार्मिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान तक सीमित करना उसकी अपूर्ण व्याख्या होगी। इसमें एक ओर वेद, उपनिषद और दर्शन के छह सम्प्रदाय समाहित हैं तो दूसरी ओर आयुर्वेद जैसी चिकित्सा-पद्धति, आर्यभट्ट और वराहमिहिर की खगोलीय गणनाएँ, कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा पतंजलि का योगदर्शन भी इसी परंपरा के अंग हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान की इस सर्वग्राही शक्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि - *"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"* [5]

अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला अन्य कुछ नहीं है। भारतीय ज्ञान-राशि की विशेषता शास्त्रीय ग्रंथों तक सीमित न रहकर लोक-कथाओं, दृष्टांतों, कहावतों और गीतों के माध्यम से भी प्रवाहित होती रही है। पंचतंत्र और हितोपदेश जैसे नीति-ग्रंथों ने इसी लोक-संचरण की परंपरा को सशक्त बनाया। भारतीय ज्ञान परंपरा की दूसरी बड़ी विशेषता उसकी अनुभवजन्यता है—यह ज्ञान केवल तार्किक निष्कर्षों पर आधारित नहीं, बल्कि साधना, अनुभव और गुरु-शिष्य संवाद से प्राप्त हुआ माना जाता है। जब यह ज्ञान संस्कृत के दुरूह व्याकरण और वर्णाश्रम-केंद्रित शिक्षा-व्यवस्था तक सीमित रहा, तब यह सीमित वर्ग तक ही पहुँच सका। हिंदी और उसकी बोलियों के उदय ने इस सीमा को तोड़ने का कार्य किया।

यदि इस परंपरा के कालक्रमिक विकास पर दृष्टि डाली जाए तो यह वैदिक काल से आरंभ होकर उपनिषद-दर्शन काल, गुप्तकालीन वैज्ञानिक स्वर्णयुग, बौद्ध-जैन चिंतन काल, भक्ति-प्रधान मध्यकाल तथा औपनिवेशिक पुनर्जागरण से होते हुए स्वातंत्र्योत्तर भारत तक निरंतर प्रवाहित होती दिखाई देती है[4], और इस संपूर्ण कालक्रम में हिंदी भाषा का योगदान क्रमशः विस्तृत होता गया है।

भारतीय ज्ञान परंपरा की व्यापकता का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि पारंपरिक विद्या-वर्गीकरण में चार वेदों, छह वेदांगों, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, मीमांसा और वेदांत को मिलाकर चौदह विद्याओं तथा चौंसठ कलाओं की एक समग्र संरचना स्वीकार की गई है, जो ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, कला और कौशल—सभी को समान महत्व देने वाली दृष्टि को प्रतिबिंबित करती है। हिंदी साहित्य ने इस समग्र दृष्टि को अपनी रचनाओं में स्थान देकर भारतीय ज्ञान परंपरा की बहुआयामिता को जीवंत रखा है।

5. संस्कृत से हिंदी तक: ज्ञान-प्रवाह की भाषिक पृष्ठभूमि

भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी का उद्भव संस्कृत की वाचिक परंपरा से प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ट के क्रमिक विकास से हुआ माना जाता है। जॉर्ज ग्रियर्सन ने अपने भाषा-सर्वेक्षण में हिंदी-भाषी क्षेत्र की बोलियों का जो वर्गीकरण प्रस्तुत किया उससे स्पष्ट होता है कि, हिंदी वस्तुतः अनेक क्षेत्रीय बोलियों—ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, भोजपुरी, मैथिली आदि—का सम्मिलित रूप है[6]

इस भाषिक विविधता ने ही हिंदी को भारत के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में ज्ञान के प्रसार का सहज माध्यम बनाया, क्योंकि प्रत्येक बोली स्थानीय समाज की मानसिकता और मुहावरे के अत्यंत निकट थी। संस्कृत के तत्सम शब्दों ने हिंदी की शब्द-संपदा को समृद्ध किया, जबकि तद्भव शब्दों ने उसे बोलचाल के निकट रखा।

कामता प्रसाद गुरु के व्याकरण-विवेचन[7] तथा धीरेंद्र वर्मा के ऐतिहासिक अध्ययनों[8] ने यह प्रमाणित किया कि हिंदी का व्याकरणिक ढाँचा यद्यपि संस्कृत से प्रभावित है, तथापि उसकी वाक्य-रचना तुलनात्मक रूप से सरल होने के कारण वह जनसामान्य के लिए अधिक सुगम्य रही।

इसके अतिरिक्त हिंदी ने अपने विकास-क्रम में पाली और प्राकृत के माध्यम से बौद्ध तथा जैन परंपराओं के नैतिक एवं दार्शनिक चिंतन को भी आत्मसात किया, जिससे उसकी ज्ञान-वाहक क्षमता वैदिक-वैष्णव परंपरा से आगे बढ़कर श्रमण एवं निर्गुण चिंतन-धाराओं तक विस्तृत हो गई।

6. ज्ञान के जनतंत्रीकरण में हिंदी की भूमिका

भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार में हिंदी की सर्वाधिक निर्णायक भूमिका भक्ति आंदोलन के दौरान सामने आई। चौदहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य कबीर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, रैदास और नानक जैसे संत-कवियों ने वेदांत, उपनिषदों और गीता के गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों को अवधी, ब्रज और खड़ी बोली के सरल पदों में प्रस्तुत किया। ज्ञान और आडंबरहीन प्रेम को शास्त्रीय पांडित्य से श्रेष्ठ ठहराते हुए कबीर कहते हैं—

> "पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
>
> ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥" [9]

दोहे में निहित संदेश के माध्यम से कबीर ने शास्त्रीय ज्ञान की जटिलता के स्थान पर अनुभवजन्य प्रेम-ज्ञान को प्रतिष्ठित कर भारतीय ज्ञान परंपरा के सर्वाधिक जनतांत्रिक आयाम को उभारा। तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना कर वाल्मीकि रामायण के संस्कृत आख्यान को व्यापक जनमानस की भाषा में इस प्रकार ढाला कि वह उत्तर भारत के गाँव-गाँव में कंठस्थ हो गया। ब्रह्म और जगत के अद्वैत-संबंध को समझाते हुए वे लिखते हैं—

"सियाराममय सब जग जानी, करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥" [10]

प्रस्तुत चौपाई के द्वारा तुलसीदास ने वेदांत के अद्वैत-सिद्धांत को भक्ति के सहज भाव में गूँथकर उसे साधारण श्रोता तक पहुँचाया। स्पष्ट है कि भक्ति काव्य केवल धार्मिक साहित्य नहीं था, बल्कि उसमें सामाजिक समानता, जाति-व्यवस्था के विरोध, गुरु-महिमा और नैतिक आचरण जैसे विषय भी अंतर्निहित थे। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने अध्ययन में यह स्पष्ट किया कि हिंदी साहित्य का यह कालखंड केवल धार्मिक उभार का परिणाम नहीं, बल्कि "भारतीय चिंतनधारा के स्वाभाविक विकास"[11] के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसकी जड़ें भक्ति-पूर्व की दार्शनिक परंपराओं में भी विद्यमान थीं।

भक्ति काव्य में ज्ञान-मार्ग और प्रेम-मार्ग के बीच का सतत संवाद भी भारतीय ज्ञान परंपरा की एक विशिष्ट विशेषता रहा है। सूरदास के भ्रमरगीत में गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ज्ञान-उपदेश का प्रत्युत्तर प्रेम-भक्ति के आग्रह से देती हैं—

"ऊधो, मन नाहीं दस बीस।" [12]

अर्थात हिंदी काव्य ने ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग के बीच के सूक्ष्म वाद-विवाद को भी सहज भाषा में प्रस्तुत कर एक जीवंत बौद्धिक परंपरा को जन्म दिया। मीराबाई ने भी सगुण भक्ति के माध्यम से पूर्ण समर्पण के भाव को अभिव्यक्त करते हुए कहा—

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।" [13]

इसी कालखंड में रहीम जैसे कवियों ने हिंदू-मुस्लिम समन्वित संस्कृति के परिवेश में नीति और व्यवहार-ज्ञान से जुड़े दोहों की रचना कर भारतीय ज्ञान परंपरा को एक सामासिक स्वरूप प्रदान किया। संबंधों की मर्यादा को समझाते हुए वे कहते हैं—

"रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाय।

टूटे से फिर ना जुड़े, जुड़े गाँठ पड़ि जाय॥" [14]

इस प्रकार भक्ति साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक—तीनों आयामों को एक साथ जनसामान्य तक पहुँचाने वाला माध्यम सिद्ध हुआ।

7. शिक्षा, अनुवाद और आधुनिक गद्य के माध्यम से प्रचार-प्रसार:

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे विद्वानों ने हिंदी गद्य को शिक्षा, पत्रकारिता और समालोचना का सशक्त माध्यम बनाया। साहित्य के सामाजिक प्रयोजन को परिभाषित करते हुए आचार्य शुक्ल का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि

“साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है” [15]

स्पष्ट है कि, हिंदी साहित्य को केवल सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं, अपितु सामूहिक चेतना और ज्ञान-विकास के माध्यम के रूप में देखा गया।

डॉ. राधाकृष्णन ने भारतीय शिक्षा-परंपरा के अध्ययन में यह इंगित किया है कि मातृभाषा-आधारित शिक्षा ही समाज में ज्ञान और चारित्रिक मूल्यों के प्रसार का सर्वाधिक प्रभावी माध्यम होती है[16]: इस स्थापना के आलोक में हिंदी माध्यम से संचालित विद्यालयों ने भारतीय दर्शन, इतिहास, नीतिशास्त्र और संस्कृति को पाठ्य-सामग्री के रूप में प्रस्तुत कर एक ऐसी पीढ़ी तैयार की जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से परिचित हुई। आधुनिक हिंदी काव्य में भी भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल स्रोतों—विशेषतः गीता के कर्मयोग-दर्शन—की निरंतरता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। रामधारी सिंह दिनकर ने शक्ति और नैतिकता के पारस्परिक संबंध को परिभाषित करते हुए लिखा—

“क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो।” [17]

यह पंक्ति महाभारत की नैतिक-दार्शनिक चेतना को आधुनिक हिंदी काव्य के मुहावरे में पुनर्व्याख्यायित करती है। डॉ. कैलाश चंद भाटिया के अध्ययन में उल्लिखित आँकड़ों के अनुसार स्वातंत्र्योत्तर भारत में हिंदी के प्रसार और शैक्षिक प्रयोग में निरंतर वृद्धि दर्ज की गई है[18], जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भारतीय ज्ञान परंपरा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाने की अनुशंसा[19] के परिप्रेक्ष्य में और अधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है।

8. संवैधानिक स्थिति और राजभाषा के रूप में हिंदी की भूमिका

भारतीय संविधान के भाग सत्रह में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा से संबंधित प्रावधान किए गए हैं, जिनमें अनुच्छेद 343 के अंतर्गत देवनागरी लिपि में लिखित हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता दी गई है[20]। विशेष रूप से अनुच्छेद 351 में यह उल्लेख है कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए और उसका विकास करे। राजभाषा अधिनियम 1963 और तत्संबंधी नियमों के माध्यम से केंद्र सरकार के कार्यालयों, न्यायालयों और शैक्षिक संस्थानों में हिंदी के प्रयोग को क्रमशः विस्तार दिया गया[21]। इस संवैधानिक प्रतिष्ठा ने हिंदी को अखिल भारतीय स्तर पर एक ऐसी सम्पर्क-भाषा का दर्जा दिया, जिसके माध्यम से विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों के लोग सांस्कृतिक और ज्ञान-संबंधी विषयों पर संवाद कर सकते हैं। विश्व हिंदी सम्मेलनों के आयोजन ने भी इस

भूमिका को अंतरराष्ट्रीय आयाम प्रदान किया है[22], जिनमें भारतीय चिंतन-परंपरा से जुड़े विषयों पर विश्व स्तर पर विचार-विमर्श होता रहा है।

9. जनसंचार माध्यमों तथा लोक-संस्कृति के द्वारा प्रसार

बीसवीं शताब्दी में मुद्रण, रेडियो, सिनेमा और दूरदर्शन जैसे जनसंचार माध्यमों ने हिंदी को भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार का एक अत्यंत प्रभावी उपकरण बना दिया। रामायण और महाभारत के दूरदर्शन धारावाहिकों ने प्राचीन आख्यानों को हिंदी भाषा के माध्यम से करोड़ों दर्शकों तक पहुँचाया। हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा और सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन पर हुए अध्ययनों में यह रेखांकित किया गया है कि लोकगीत, कथावाचन-परंपरा और धार्मिक प्रवचन जैसी मौखिक विधाएँ आज भी अधिकांशतः हिंदी अथवा उसकी बोलियों में ही संचालित होती हैं[23], जो ग्रामीण और अर्ध-शहरी भारत में ज्ञान-परंपरा की जीवंतता बनाए रखने का कार्य करती हैं।

10. डिजिटल युग और वैश्विक मंच पर हिंदी की भूमिका

इक्कीसवीं शताब्दी में सूचना-प्रौद्योगिकी के विस्तार ने हिंदी की भूमिका को एक नए आयाम में प्रवेश कराया है। आज हिंदी में वेबसाइटों, ब्लॉगों, ई-पुस्तकों, पॉडकास्ट और सोशल मीडिया मंचों की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, जिससे भारतीय दर्शन, योग, आयुर्वेद और आध्यात्मिक साहित्य से जुड़ी सामग्री हिंदी भाषा में सहज उपलब्ध हो रही है। वैश्वीकरण के विविध आयामों पर हुए अध्ययन यह स्पष्ट करते हैं कि भाषा और संस्कृति का यह प्रसार अब राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं रहा[24], और इसी प्रवृत्ति के अनुरूप प्रवासी भारतीय समुदायों के माध्यम से मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद और खाड़ी देशों में भी हिंदी भारतीय सांस्कृतिक पहचान और ज्ञान-परंपरा की वाहक बनी हुई है।

12. वैचारिक प्रारूप: प्रसार के प्रमुख माध्यम

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिंदी भाषा ने भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार में परस्पर-संबद्ध माध्यमों के द्वारा भूमिका निभाई है — भक्ति साहित्य, शिक्षा एवं अनुवाद, संविधान व राजभाषा-व्यवस्था, जनसंचार माध्यम, तथा डिजिटल व वैश्विक मंच। इन सभी माध्यमों के पारस्परिक संबंध हिन्दी को व्यापकता प्रदान करता चला गया और हिन्दी हृदयों की स्वामिनी बन ज्ञान परम्पराओं का प्रचार प्रसार करने में सक्षम हो सकी है।

13. चुनौतियाँ एवं समाधान के सुझाव

हिंदी भाषा के माध्यम से भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार में अनेक चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं।

- उच्च शिक्षा और शोध के क्षेत्र में अंग्रेजी की प्रधानता के कारण मौलिक शास्त्रीय ग्रंथों के प्रामाणिक और गुणवत्तापूर्ण हिंदी अनुवादों का अभाव बना हुआ है।

- द्वितीय, तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली के मानकीकरण में एकरूपता की कमी के कारण हिंदी में लिखित सामग्री कभी-कभी दुरूह प्रतीत होती है।

- डिजिटल मंचों पर उपलब्ध हिंदी सामग्री की गुणवत्ता और प्रामाणिकता का सत्यापन एक सतत आवश्यकता है।

इन चुनौतियों के समाधान हेतु आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों में भारतीय ज्ञान परंपरा से संबंधित पाठ्यक्रमों को हिंदी माध्यम में भी सुलभ कराया जाए, प्रामाणिक अनुवाद-परियोजनाओं को प्रोत्साहन दिया जाए तथा डिजिटल मंचों पर विश्वसनीय एवं शोधपरक हिंदी सामग्री के सृजन को प्राथमिकता दी जाए। एक अन्य महत्वपूर्ण चुनौती नई पीढ़ी में हिंदी के प्रति घटती रुचि और अंग्रेज़ी-माध्यम विद्यालयों की बढ़ती संख्या से भी जुड़ी है। इस समस्या के समाधान हेतु द्विभाषिक शिक्षण-पद्धति अपनाना तथा हिंदी में सृजित समकालीन एवं रुचिकर सामग्री का सृजन करना आवश्यक होगा।

14. निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रसार में हिंदी भाषा की भूमिका बहुआयामी और ऐतिहासिक रूप से सतत रही है। भक्ति काल में हिंदी ने शास्त्रीय ज्ञान को जनभाषा में रूपांतरित कर उसे सामाजिक समरसता का माध्यम बनाया, आधुनिक काल में उसने शिक्षा, पत्रकारिता और राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में योगदान दिया, संविधान ने उसे राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की, तथा वर्तमान डिजिटल युग में वह वैश्विक स्तर पर भारतीय चिंतन-परंपरा की प्रतिनिधि भाषा के रूप में उभर रही है। जनगणना 2011 का 43.63 प्रतिशत का आकंड़ा[24] हो या KPMG-Google[25] की डिजिटल वृद्धि दर—दोनों इस बात के प्रमाण हैं कि हिंदी की व्यापकता तथ्यात्मक रूप से सिद्ध होती है, न कि केवल सैद्धांतिक दावों के आधार पर। भविष्य में यदि प्रामाणिक अनुवाद, शोधपरक डिजिटल सामग्री और शिक्षा-नीति के समुचित क्रियान्वयन पर बल दिया जाए, तो हिंदी भाषा भारतीय ज्ञान परंपरा को न केवल संरक्षित रख सकेगी, बल्कि उसे विश्व-पटल पर एक सशक्त पहचान भी दिला सकेगी।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, आशुतोष. “भारतीय ज्ञान परम्परा और हिन्दी साहित्य”. Integral Research (Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal), ISSN: 3048-5991, खंड 02, अंक 05, मई 2025, पृ. 69-74.

2. सिन्हा, संस्कृति एवं जैन, निशा. "भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी भाषा की विकास यात्रा". अक्षरसूर्या: पीयर-रिव्यूड, मल्टी लिंगुअल ई-जर्नल, खंड 07, अंक 03, जुलाई 2025.

3. गोयल, ममता एवं आरती, कुमारी. "भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी साहित्य". International Journal of Hindi Research, खंड 10, अंक 4, 2024, पृ. 53-54.

4. बघेल, प्रदीप सिंह. भारतीय ज्ञान परंपरा: संक्षिप्त परिचय (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के परिप्रेक्ष्य में). भोपाल: पीपुल्स विश्वविद्यालय.

5. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 4, श्लोक 38.

6. Grierson, George A. Linguistic Survey of India. Calcutta: Government of India, Central Publication Branch.

7. गुरु, कामता प्रसाद. हिंदी व्याकरण. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.

8. वर्मा, धीरेंद्र. हिंदी भाषा का इतिहास. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

9. कबीर. कबीर ग्रंथावली. संपादक: श्यामसुंदर दास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.

10. तुलसीदास. रामचरितमानस, बालकांड. गीता प्रेस, गोरखपुर.

11. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. हिंदी साहित्य की भूमिका. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1940.

12. सूरदास. सूरसागर (भ्रमरगीत सार). संपादक: रामचंद्र शुक्ल. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.

13. मीराबाई. मीराबाई की पदावली. संपादक: परशुराम चतुर्वेदी. प्रयाग: हिंदुस्तानी एकेडमी.

14. रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना). रहीम दोहावली/रहीम सतसई.

15. शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा.

16. राधाकृष्णन. भारतीय शिक्षा का इतिहास. कानपुर: विवेक प्रकाशन, संस्करण 1984.

17. दिनकर, रामधारी सिंह. रश्मिरथी. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

18. भाटिया, कैलाश चंद. हिंदी विकास और संभावना. सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार.

19. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार.

20. भारत का संविधान, भाग 17, अनुच्छेद 343-351. राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार. rajbhasha.gov.in

21. राजभाषा अधिनियम, 1963 (यथासंशोधित). राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार.

22. 10वाँ विश्व हिंदी सम्मेलन. स्मारिका, भोपाल, 2015.

23. दुबे, अमरनाथ. हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा एवं सामाजिक सांस्कृतिक संगठन.

24. पांडेय, वी. के. वैश्वीकरण के विविध आयाम. इलाहाबाद: पुस्तक सदन.

25. भारत की जनगणना 2011. भाषा एटलस एवं भाषा डेटा, रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त कार्यालय, भारत सरकार.

26. KPMG in India & Google. "Indian Languages – Defining India's Internet." अप्रैल 2017.